१८५७ के महासंग्राममें गुजरात के आदिवासीयों का योगदान

डो. राजेश कोठारी
आसिस्टन्ट प्रोफेसर,
एम. पी. शाह आर्टस एवं सायन्स कोलेज,सुरेन्द्रनगर

१.गुजरात के आदिवासीयों का १८५७ के पूर्वका इतिहास

इतिहास निर्माणमें केवल अभिजात वर्ग की ही भूमिका नहीं होती । इसमें गरीबों, किसानों, मजदूरों, आदिवासीयों, दलितों, नारीओं आदि शोषित वर्गोकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है । भारतके इतिहासमें ऐसा ही एक वंचित और शोषित वर्ग आदिवासी वर्ग है । भारत और गुजरात के इतिहासमें आदिवासीयों ऐतिहासिक प्रजा के रुपमें अस्तित्व में है । इस आदिवासी वर्गका १८५७ के महासंग्राममें क्या योगदान था । इसके बारे में कुछ बातें करने का उपक्रम इस लेखमें प्रस्तुत है । आदिवासीयों का इतिहास कई सदीयों पुराना है । प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्यमें आदिवासीयों निषाद, शबर, भील, कोल, कोरात, दास, दस्यु, शुद्र, द्रमिद और द्रविड आदि नामसे जाने जाते है । वेद, पुराण, महाभारत और रामायणमें भी इसका उल्लेख मिलता है । भारत के ज्यादा आदिवासी आबादीवाले राज्योमें से गुजरात एक है । गुजरातमें सातपुडा, विंध्य, दख्खन की सह्याद्री पर्वतमाला और उत्तर में अरावलीकी पर्वतमालामें आदिवासी लोग फैले हुअे है । जिसमें भील, चोधरा, दूबळा, गामीत, कोंकणा, नायक-नायका, राठवा और वारली समाविष्ट है ।[१] जो साबरकांठा, बनासकांठा, पंचमहल, नर्मदा, भरुच, सुरत, वलसाड, तापी, डांग और अहमदाबाद जिलेमें बसे हुअे है । गुजरात के आदिवासीयोंमें भील जाति सबसे पुरानी और बहुमतवाली जाति है । भारतमें ब्रिटिश शासनके प्रारंभसे ही विदेशी शासन के खिलाफ आदिवासी टकराते थे । भारत में ब्रिटिश शासन के प्रारंभ से ही आदिवासी जीवनरीति पर ब्रिटिशरोंकी नीतिका विपरित प्रभाव पडा था ।[२] ब्रिटिश शासन का विरोघ करने में भारत के अलग अलग क्षेत्रके आदिवासीयों भी पीछे नहीं थे । १९वीं शताब्दी में उन्होंने एकजुट होकर कइबार विद्रोह किया था ।

१८१८में गुजरात में ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई तबसे आदिवासीयोंने विभिन्न कारणसे हिंसक विरोध किया था । उदाहरण के लिए, दक्षिण गुजरात के डांग के भील राजाओं और राजपीपळा - सागबारा के वसावा, भरुच जिले के तळावीया और पंचमहल के नायक आदिवासी द्वारा किये गए विद्रोह इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है । १८३८में पंचमहाल जिलेके नारुकोट क्षेत्रके आदिवासीयोंने रुपानायक और केवल नायक के नेतृत्वमें ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह किया था । लेकीन मजबूत संगठन शक्ति और निश्चित विचारधारा के अभावके कारण इस विद्रोहका विस्तरण ज्यादातर नही हुआ था । फिर भी गुजरात के आदिवासीयों के इतिहास में इसके महत्वको नजरअंदाज नहीं किया जा सकता । यही आदिवासीयों १८५७ के संग्राममें भी ब्रिटिश शासनके खिलाफ एक होकर लडे थे । सागबाराके स्थानिक जमींदार कुंवर वसावा, डुंगर वसावा, लश्करिया वसावा इत्यादिने १८५७ की राजनीतिक अराजकता का फायदा उठाकर ब्रिटिश शासनके खिलाफ विद्रोह किया था । हालांकी ये विद्रोह अल्पकालीन रहा था । लेकीन

उन्होने ब्रिटिश सत्ता को प्रभावित ज२२ किया था । इस त२ह उत्त२ गुज२ात के विजापुर२ में मगनलाल नामक बनीयाकी अगुवाइ में हुए विद्रोहको भील और२ कोली प्रजा का मजबूत सहा२ा मिला था । आदिवासीयों के पूर्व हुए अनुभवो के का२ण १८५७ के विद्रोह के दौ२ान अंग्रेज लोग डांगी भीलो से ड२ते थे ।[३]

२. १८५७ में आदिवासी भागीदारीकी पृष्टभूमि

१९वीं सदीमें भा२त में आदिवासी विद्रोह की अेक श्रृंखला दिखाइ देती है । ये सभी विद्रोह के लिए कोई अेक ही वजह नहीं थी । २ाजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक जैसे कई का२ण जिम्मेदा२ थे । जैसा की देखा जाए तो बिनआदिवासीयों की तुलनामें आदिवासीयों की जीवनरीति अलग २ही है । कृषि और२ जंगली पेदाश और२ मर्यादित उपक२णोंसे खेतीबाडी में काम क२ने का तरीका काफी अनोखा और२ आसान था । लेकीन ब्रिटिश शासनने उनकी जीवनरीति प२ गह२ी अस२ डाली थी । १९वीं सदीमें भा२त के दुर्गम जंगलो प२ भी ब्रिटिश शासको ने कब्जा जमाया था । प्रा२ंभ में विदेशी मिशनरियों ने और२ बादमें वेपारीओं ने आदिवासी विस्ता२ो में प्रवेश किया । स२का२ी कानून, कोर्ट, पुलीस आदि की मदद लेक२ ब्रिटिश२ों ने आदिवासीयों प२ वर्चस्व स्थापित क२के उनके भोलेपन और२ अज्ञानता का लाभ उठाक२ ासका शोषण शुरु किया । स्थानिक स्त२ प२ सामुदायिक जीवन, मूल्यों और२ रीतिनिती का स्थान व्यक्तिवादी और२ पूंजीवादी व्यवस्था के नियमो ने लिया । आदिवासीयों के कानून एवं नियमों का स्थान ब्रिटिश स२का२ के नियमो एवं कानूनोंने लिया । लागु कि गई इस नई व्यवस्था आदिवासीयोंकी सोच और२ समज से बाह२ थी । आदिवासी अपने आपको दूस२े समाज से दू२ २खते थे । लेकीन ब्रिटिश शासन के संस्थानवादी ढांचे के भीत२ समाहित होने से ब्रिटिश शासन की व्यवस्था भी उसके प२ लागु हूई । इसलिये आदिवासीयों की पा२ंपरिक व्यवस्था प२ प्रभाव पडा । ब्रिटिश शासनमें आदिवासीयों का सामूहिक स्वामीत्व का अंत आया और२ आदिवासी कबीलों के स२दा२ों को जमींदा२ बनाक२ नई क२ प्रणाली दाखिल क२नेसे उनमें तनाव बढा था ।

आदिवासी और२ बिनआदिवासीयों के बीच का सांस्कृतिक टक२ाव भी इतना जिम्मेदा२ था । आदिवासीयों की धार्मिक मान्यताओं की और२ भावनाओं की हांसी उडाइ गई । उनके पा२ंपरिक रीतिरि२ाजों, नाग२िक अधिका२, न्यायप्रणालि और२ ग२िमा के मानकों की हांसी उडाक२ उनको अपमानित किया गया । तब आदिवासीयों ने भयानक २ुपसे ानकी प्रतिक्रिया बताई ।[४] आदिवासी विस्ता२ो में ईसाई मिशनरियों के द्वा२ा अपने धर्म का प्रचा२ प्रबल २ुपसे प्रसा२ित क२ने से आदिवासीयों को लगा की अपना धर्म खत२े में है । शुरुआतमें कुछ आदिवासीयों ने ईसाई धर्म इसलिये अपनाया की उसको लगता था कि ईसाई धर्म अपनाने से आदिवासीयों की स्थिति सुध२ेगी, लेकिन अैसा न होने से वे नि२ाश हुए । फलस्व२ुप आदिवासयों में दो भाग हो गये । एक मूल आदिवासी और२ दूस२े ईसाई आदिवासी । इसलिये आदिवासीयों की अेक्ता खंडित हुई इसके अलावां आदिवासीयों में धार्मिक एवं चमत्का२िक नेता उभ२ आये जो ऐसा दिलासा देते थे कि इश्व२ ानके कष्टों को अवश्य दू२ करेंगे और२ बाह२ के लोगों से मुक्ति दिलायेंगे । आदिवासीयों में ऐसी आस्था का सृजन क२के सभी आदिवासीयों को विदेशी शासन के खिलाफ एकझूट होक२ लडनेका आहवान किया । आदिवासीयों में न्यायकी व्यवस्था काफी आसान थी और२ महंगी नहीं थी । गांव का बुझुर्ग या तो जाति पंचायत द्वा२ा न्याय किया जाता था । लेकिन ब्रिटिश शासन में पुलीस एवं अदालती कार्यवाही आदिवासीयों को महंगी लगती थी और२ इसमें

पारंपरिक न्यायप्रणालि पूरी तरह अनुपस्थित थी । ऐसी स्थिति में आदिवासीयों को ब्रिटिश शासनकी न्याय प्रणालिसे विश्वास उठ गया था ।[५] आर्थिक कारण भी इतना जिम्मेदार था । बाहर के ठेकेदारों, साहूकारों और व्यापारियोंने ब्रिटिश शासन का साथ लेकर आदिवासीयों को ऋणमें फसाकर उनकी जमीन छीन ली । कइ किस्से अैसे भी हुए कि जिसमें आदिवासी मुखीयां का भी शोषण हुआ था । इसिलिये आदिवासीयों, उनके सरदारों एवं मुखीयों, सब अंग्रेजो के खिलाफ एक हुअे । मध्यकाल के प्रारंभ पूर्व आदिवासीयों का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर काफी कम प्रभाव दिखाइ देता है । जमीन और जंगल के साथ आदिवासीयों का नाता बना रहा था । फलस्वरुप मध्यकाल में आदिवासीयों और मुस्लीमों के बीच बहुत कम संघर्ष दिखाई देता है ।[६]

लेकीन १८वीं सदीके उतरार्धकी प्रमुख बात यह थी, कि तत्कालिन विद्रोह का नेतृत्व स्थानभ्रष्ट स्थानिक सरदारों, जमींदारों एवं धार्मिक संप्रदाय जैसा पारंपरिक रुप से किया गया था । १९वीं सदी में हुए विद्रोह का नेतृत्व समाज के निम्न वर्गने किया था । इस बदलाव की स्पष्टता ब्रिटिश शासन के प्रसार में मिलती है । आदिवासी कबीलों के सरदारों को जमींदार बनाया गया । कइं आदिवासी विद्रोह के पीछे पुनरुत्थानवादी विचारसरणी थी । हालांकि आदिवासी विद्रोह की नीवमें ज्यादात्तर उसके जातीय हित दिखाई देता है । उन्होंने वर्ग के आधार पर नहीं किन्तु जाति के आधार पर आदिवासीयों को संगठित किया । उन्होने कभी भी दूसरे आदिवासी पर हमला नहीं किया हैा[७] बी. अेस. गुहा के विचार अनुसार अपनेसे अधिक समृद्ध लोगों द्वारा किये गये शोषणमें से ये सभी आदिवासी विद्रोह का जन्म हुआ था । एक खास बात यह है कि बाहर से आनेवाले सभी लोगों को आदिवासी अपना दुश्मन नहीं मानते थे । सामान्य रुपसे बाहर से आनेवाले आदिवासी क्षेत्रोमें जो बसते थे उन पर आदिवासीयों द्वारा हमला नहीं किया जाता था । किन्तु जो गरीब थे और आदिवासी गाँवोंकी अर्थव्यवस्थामें मददरुप थे एसे लोगों के साथ सामाजिक संबंध स्थापित किये । इतना ही नहीं कइंबार तो यह लोग आदिवासीयों के साथ मिलकर लडे भी थे ।[८] ऐसे समयमें जाति के आधार पर नहीं किन्तु वर्ग के आधार पर एकदूसरे से मिलकर अंग्रेजो के खिलाफ एकजूट हुए ।

निष्कर्षतः कह सकते है कि १८५७ के संग्राम में जूडने के लिए आदिवासीयों के पास कईं कारण थे । इसिलिए भारतकी दूसरी किसी भी प्रजा की तुलनामें वे विशेष महत्व रखती है ।

३.१८५७ का संग्राम और गुजरात

गुजरात में ब्रिटिश साम्राज्य का सामूहिक रुपसे विरोध करनेवाले लोग आदिवासी थे । उनके पीछे अपने स्वयं की विशिष्ट पारंपरिक वजह थी । विद्रोह में आदिवासीयों का नेतृत्व करनेवालों में कई लोग सामंती जमींदारों और उनके वंशज थे । मराठी शासन का अंत और ब्रिटिश शासन लागु होने से पूर्व इस समय के संधिकालमें भीलोने स्थापित हितो के सामने कईबार विद्रोह किया था । क्युंकि ब्रिटिश शासन लागु होने से पूंजीवाद की झपटमें आदिवासीयों की पारंपरिक प्राकृतिक जीवनरीति पर सवाल खडा हुआ था । और ब्रिटिश सत्ता के साथ देशी राज्यों का मजबूत गठबंधन होने से आदिवासीयों की समस्या और बढी थी । इसका परिणाम यह आया कि १८५७ के पूर्व ही आदिवासीयों ने बगावत शुरु कर दी थी । दाहरण तौर पर देखा जाए तो १८५४ में सूंथ राज्यकी ईशान का सरहदी गांवो के भीलोंने, गडके ठाकोर के सामने बगावत शुरु की थी । इस बगावत के सामने रक्षा पाने के लिये महाराजा भवानीसिंहने सरहद पर फतेगढी

नामका गढ बनवाया था । जो " ***फतेह का गढ*** " के नाम से जाना जाता था । फि२ भी भील जाति इसके अधिन नहीं हुई । इसलिए ब्रिटिश सत्ताने उस ओ२ के गाँवो में थाना शु१ किया था ।[९] फि२ भी सूंथ रा२ज्य के विरोधमें भीलोंने संघर्ष जारी र२खा था । इस संघर्षको १८५७ में बढावा मिला था । गुज२रात में दांता से लेके डांग तक के आदिवासीयों में एसे कई उदाह२ण पाये जाते है ।

गुज२रात में ब्रिटिश सत्ताका विरोध क२ने में आदिवासीयों की प्रमुख भूमिका दिखाई देती है । इसमें खास क२के पंचमहल के आदिवासीयों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी । ब्रिटिश सत्ता का सबसे ज्यादा विरोध प्रदर्शन यहां देखनेको मिलता हैं । इसके पीछे कंई वजह थी । पंचमहल में ब्रिटिश सत्ता के अलावां २२ से अधिक एसी छोटी-मोटी स्थानिक रियासतें थी । ये रियासतें ब्रिटिश सत्ता के आश्रित थी । ब्रिटिश सत्ताके द्वारा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था दाखिल होनेसे जल, जमीन और२ जंगल जैसी प्राकृतिक चीझों प२ निर्भ२ आदिवासी जाति अब सांस्थानिक प्रशासन प२ निर्भ२ होने लगी । ब्रिटिश सत्ताके शासन के दौ२ान आदिवासीयों की क२ुण हालात का ब्यो२ा निम्नलिखित वाक्यमें मिलता है । "हमें हमा२े जंगलीपन और२ फि२ हमा२े जंगल, हमा२ी झोंपडियों और२ गुफाए वापस दीजिए " । (Give us ourwildness and our-woods, our huts and caves again.) प्राकृतिक अधिका२ पाने के लिए भीलों की लडाई दशको तक चली थी । इस लडाई का महत्वपूर्ण मुकाम १८५७ का संग्राम था ।[१०] इसके अलावा भी उच्चकुलीन वर्गो का भीलों के साथ अमानवीय व्यवहा२ २हा था । इस त२ह मैदानी प्रजा के साथ सामाजिक विनिमय के अभाव के का२ण प२स्प२ बे२भावना पैदा हुई थी ।

१८५७ का संग्राम पूरे उत्त२ भा२त में व्यापक२ुप से फैल चूका था । इसको दबाने के लिए ब्रिटिश सत्ताने पूरी ताकत अजमाई थी । इसलिये उत्त२ एवं मध्य भा२त में ब्रिटिश सत्ता से बचने के लिए तात्या टोपे और२ फि२ोझशा जैसे विप्लव के नेताओंने गुज२ात में आश्रय ढूंढा था । महू और२ भोपाव२ जैसी जगह से मध्यभा२त में से आनेवाले विद्रोहीओं के लिए पंचमहलका पहाडी और२ वनक्षेत्र विशेष२ुप से महत्वपूर्ण २हा था । इस क्षेत्रमें विद्रोहीओं के खिलाफ लड २ही ब्रिटिश सत्ताको पंचमहल की नायका आदिवासी जाति का विद्रोह का समानांत२ सामना क२ना पडा था । केवल १८५७ में ही नहीं, लेकिन १८१८ से ही ब्रिटिश सत्ता और२ प्रादेशिक रियासतों नायक जातिकी विद्रोही गतिविधियोंसे व्याकुल थी । रेवाकांठा डीरेकटरी की सूचना के मुताबीक १८३८ के फ२वरी में छोटाादेपु२, जांबुधोडा और२ गोध२ा के नायकाओंने बडे पैमाने प२ विद्रोह क२के चारोंओ२ उपद्रव मचा दिया था । उसको रोकने के लिए ब्रिटिश सत्ता को तत्काल कदम उठाने पडे थे ।[११]

१८१८, १८३८-३९, १८५४, १८५७, १८५९ और२ १८६८ में आदिवासीयोंने रा२जनीतिक, सामाजिक और२ आर्थिक का२णों को लेक२ अंग्रेजो और२ स्थानीक सत्ताओने एकझूट होक२ सामना किया था । जिसमें १८३८ से लेक२ १८६८ तक नायको का समय-समय प२ नेतृत्व क२नेवाला २ुपसिंह नायक की गतिविधियां विशेष२ुप से उल्लेखनीय है । २ुपसिंह नायक की लडाई केवल ब्रिटिश सत्ता के सामने ही नही थी, किन्तु प्रादेशिक रियासतों के खिलाफ भी थी, क्युंकि उसकी जमींदारी छीन लेनेमें छोटाादेपु२ और२ देवगढबारीया दोनों रियासतें समान२ुप से दोषीत थी । २ुपसिंह नायकने १८३८ से लडत शु१ कि थी, और२ १८५७ की अशांति का पूरा फायदा उठाने का प्रयास किया था । बोम्बे गेझेटिय२ने इस धटना का विस्ता२ से वर्णन किया है । १८५८ के अक्तूब२ में

संखेडा के नायकों ने भासाहब पवार के उकसाने पर रुपानायक और केवल नायक के नेतृत्व में ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ हथियार उठाकर नारुकोट के पुलीसथाने में लूंट करने के बाद ८वीं रेजिमेन्ट अेन. आइ. के केप्टन बेटस के दल पर जांबुघोडा के पास हमला किया । नायको, असंख्य विलायती, स्वदेशी बंदूकधारी और तात्या टोपे की बिखरी हूइ सेना, ये सबने मिलकर चांपानेर और नारुकोट के बीच के क्षेत्र में कब्जा कर लिया और गोधरा के उत्तर भाग तक ब्रिटिश प्रशासन को परेशान करके कई गांवो में लूंट भी चलाई । रुपसिंह नायक के नेतृत्व में किया गया यह विद्रोह को दबाने के लिये पोलिटिकल एजन्टने १८५८ में कोर्नवोलेसकी नियुक्ति कि । फिर भी नायकों और मकरानीयोंने संयुक्त रुपसे मिलकर एक सुबेदार के साथ सात लोंगो की हत्या कर दी और इस लडाईमें ११ लोग घायल भी हुए थे । आखिर में रिचार्ड बनर के सामने रुपसिंह नायक की हार हुई । भील कोर्प्स की मददसे ही नायकों को आत्मसमर्पण के लिये मजबूर होना पडा था ।[१२]

१८५७ के दौरान ही नायकोंने बगावत कि थी । इस बगावत के पीछे कई वजह बताई जा सकती है । १८५७ के संग्राम के विद्रोहीओं के साथ नायक जाति का कोई सयुंक्त हित नहीं दिखाई देता । १८५७ के पूर्व पंचमहल पर ग्वालियर के सिंधियाओं का अधिकार था । और उस समय में न्याय और व्यवस्था का सर्वथा अभाव था, ऐसी परिस्थिति स्वतंत्र और स्वछंदी रहनेवाली भील और नायका जाति जैसी जातियों के लिये बहुत अनुकूल थी । किन्तु पंचमहलमें ब्रिटिश अमल के बाद न्याय और व्यवस्था के आग्रही ब्रिटिश सरकारने अपना अलग ही बंदोबस्त खडा किया । जिस जिलेकी लूंटफाट करती और उग्रवादी जातिओ के लिऐ खतरारुप था । इसकी प्रतिकिया के रुपमें पुरे जिलेमें गुन्हा और लूंटफाट की श्रृंखलाओ की सृजन कर दी थी । जो निम्नांकित कोष्टक पर से ईस बातका अंदाजा लगा सकते है ।[१३]

साल	गुन्हाओं की संख्या
१८५४	४९४
१८५५	८३९
१८५६	१००९
१८५७	९८०
१८५८	८८३
१८५९	१०३१
१८६०	११८६
(Gazetteer of the Bombay Fresidency,Kaira - Fanchmahal,Voll-3 F.273)	

इसलिए नायकाओं और भीलोंकी १८५७ के विद्रोहमें भागीदारीको ासकी पुरानी गुन्हाखोरी और लूंटफाटकी आदतों का एक बडा स्वरुप माना जा सकता है । और विद्रोहीओ के साथ उनका गठबंधन एक दूसरे के लिये फायदेमंद गठबंधन ही था, अैसा कहनेमें कोई अतिश्योक्ति नहीं । इस तरह १८५७ के संग्राममें शामिल होने की आदिवासीयों की वृत्ति मिश्र स्वरुप की देखी गई है ।

४.१८५७ के संग्राममें आदिवासीयोंके खिलाफ हुई प्रतिक्रियाएँ

१८५७ का संग्राम पूरे भारतमें अंग्रेजो के खिलाफ आयोजनबद्ध और शक्तिशाली संग्राम था । उसमें समाजके निम्न वर्ग के लोग भी शामिल होना ब्रिटिश सत्ताको स्वीकार्य नहीं था । उसकी प्रतिकिया तीव्र थी । जहां विद्रोह नहीं हुआ था ऐसे क्षेत्र में विद्रोह न हो उसके लिए ब्रिटिश सरकार लश्करी व्यवस्था के लिए सतत कार्यरत रही थी । उसके फलस्वरुप खानदेश भील कोर्प्स के भूतकालकी

अनुभूतिओं के आधार पर गुजरातमें भी एक भील कोपर्स की स्थापना करनेका तय किया गया था। विद्रोह होनेके ३० साल पहले सरकार द्वारा खानदेशमें भील जाति पर प्रभाव डालने के लिए उस क्षेत्रमें भील रेजिमेन्टकी स्थापना कि गइ। और उसका मूल हेतु यह था कि भील जातिका जो परंपरागत व्यवसाय खेतीबाडी का था उसके दूसरे विकल्पके रुपमें भील जातिको रेजिमेन्टमें शामिल करने का था। उसके बावझूद उत्तर पश्विम खानदेशमें जो विद्रोह भडका और तनावपूर्ण स्थिति खडी हुइ उसका कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा भील जातिके लिअे जो लाभ धोषित किये गये थे वे लाभ भील जाति के अंतिम स्तर तक पहोंच पाया नहीं था,वह था। १८५७ का विद्रोह उत्तर भारत और मध्यभारत होकर गुजरातके पंचमहल जिले के दाहोदमें बडी तेजी से फैला था। और उसे तत्काल दबा देनेमें ब्रिटिश सरकार सफल रही थी। किन्तु उनके मनमें ऐसा डर था, कि विद्रोह फिर से होगा। इसलिए वे लगातार जागृत रहकर विद्रोह को दबानेके लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। जिसकी जानकारी केप्टन बकल (कमान्डन्ट, गुजरात भील बोय) के द्वारा दिनांक १५वीं जून १८५७ के दिन दाहोद से ब्रीगेडियर जनरल आर. शेक्सपियर (पोलिटिकल अेजन्ट,बरोडा) को लिखे गए पत्र से मिलती है। इस पत्रमें बताया गया है कि एक अतिरिक्त लश्करी अधिकारीकी स्थायीरुपसे नियुक्ति कि जाऐ। इस पत्रमें आगे सूचना दी गई थी, कि सेकन्ड कमान्ड, गुजरात भील कोर्प्स के लेफट बनरको उसकी वर्तमान सेवा के अतिरिक्त रेजिमेन्टके एडयुजन्ट की नियुक्ति मिलनी चाहिए। भील रेजिमेन्टकी ड्रीलमें इस समय ८३ लोग है और उसके योग्य संचालन के लिए परेड के दौरान २ अधिकारी वहां उपस्थित रहे यह जरुरी है। इस स्थिति में एक कार्यकारी अधिकारीकी तत्काल स्थायी नियुक्ति करनी चाहिए।[१४]

विप्लव के बाद पंचमहलमें राजकीय, सामाजिक और प्रशासनीक दष्टिसे अंग्रेजोंको कई त्वरीत परिणाम देखनेको मिले। जिसमें अखिल भारत कक्षा पर अंग्रेजोने जिस पद्धति को अपनाया था, उसके मुताबिक भीलों और नायकाओं जैसी विद्रोही जातिओं को अंकुशमें लेने के लिए १८५८ में पंचमहाल भील कोर्प्स की दाहोदमें रचना कि गई। [१५] रेवातट पर रहनेवाले आदिवासी-मूलनिवासओं (Aboriginal) की एक भील कोर्प्स रचकर उसकी लाक्षणिकताए विद्रोह कूचलनेमें कैसे मददमें आए इसके बारेमें मेजर वोलेस द्वारा केप्टन बकलको लिखा हुआ पत्रमें बताया गया है। [१६] जिसमें भीलोंके रहन-सहन, सुख-सुविधा एवं उसकी व्यावसायिक प्रविणता, नीतिमत्ता, बौद्धिकक्षमता, उनकी पारंपरिक लाक्षणिकता ध्यानमें रखके, इसमें आवश्यक सुधार करके, उनकी बुरी आदतें दूर करके उन पर ब्रिटिश लश्करी तरीके अजमाने पर वे विद्रोह से दूर रहेंगे, और उनका ज्यादा से ज्यादा फायदा उठानेके लिए दाहोदमें अधिकारीयों के लिए कवार्टर्स, गुजरात भील कोर्प्स की लाइन, कार्यशाला, बाग इत्यादि बनाने की कामगीरी शरु कि गई थी। जो आज भी दाहोदमें देखी जाति है। अंग्रेजोने भीलों के लिए प्राथमिक सुविधाओं का सर्जन किया। जो १८५७ में भीलोंका योगदानको समजनेमें सहायभूत होता है।

उसके बावजूद भी विद्रोह हो तो उसको तत्काल दबानेके लिए अंग्रेज सतत सतर्क और चिंतित थे। उसके लिए उन्होंने भील रेजीमेन्टके वेतनमें बढोतरी करके निष्ठावान और शक्तिशाली,सक्षम अधिकारीयों को लंबे समय तक इस क्षेत्रमें कार्यरत करने के लिए प्रोत्साहित किया था। इस बातका जिक्र ब्रीगेडियर जनरल आर. शेक्सपियर(पोलिटिकल कमिशनर इन गुजरात) के द्वारा दिनांक २६ जून १८५८ के दिन बरोडा से एच. एल. एन्डरसन (सेक्रेटरी,गवर्मेन्ट पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट, बोम्बे) को लिखा गया पत्र से मिलता है। [१७] भील कोर्प्स के युनिफार्म में हरे पत्ते जैसी

रंगीन टोपी,ासके पास एक ब्युगल,गाढ जांबुन रंगका कोट जिसका आगे का हिस्सा लाल रंगका होता था और खाखी पतलून और उसके पास के सेफर की एक राइफल रहती थी। भील कोर्प्स के आघे सैनिक मुख्य मथक के अलावा दूसरी जगह पर सेवारत थे। वे तहसीलदार, तलसील कचहरी,जिले के अधिकारीओंकी रक्षा करना, एवं जिलेके अलग-अलग थानेमें सेवारत थे। जिसमें १० सूबेदार १० जमादार, ५० हवालदार,५० नायक,१ बगल मेजर, १० बगलर और ८०० प्राइवेट ऐसी कुल मिला के दल की संख्या ९३१ की थी। उसका मुख्यमथक दाहोदमें रखा गया था। वहां ६०० लोग रह सके अैसी वसाहत बनाइ गई थी।[१८] ७वीं मुंबइ रेजीमेन्ट के लेफटनन्ट आर. एम बनरकी गुजरात भील कोर्प्स के सेकन्ड इन कमान्डन्ट के पद पर नियुक्ति कि गई थी। कुल ८२२ में से ५६६ बंदूकघारी और २५६ तलवारघारी या संगीनघारी थे। उनमेंसे १९९ का एक दूसरे जूथमें, १२ अधिकारी और १८७ कोन्स्टेबल थे। जिसको सूचना के अनुसार तत्काल कार्यवाही के लिए तैयार रखे गए थे। २ सिनियर युरोपीयन अधिकारी के अलावा सब भारतीय थे। जिसमें २६ अधिकारी और १८६ कोन्स्टेबल मुस्लीम थे। १ पारसी अधिकारी, १० अधिकारी और ५५ कोन्स्टेबल ब्राह्मन थे। ५ अधिकारी और ३० कोन्स्टेबल राजपूत थे। ४० अधिकारी और ८१ कोन्स्टेबल मराठी थे। १७ अधिकारी और २५० कोन्स्टेबल भील थे। ३ अधिकारी और १७ कोन्स्टेबल कोली जाति के थे। १० अधिकारी और ५३ कोन्स्टेबल हिन्दु की अन्य जाति के थे उसमें से ६ जगह खाली थी और रेवातटमें नियुक्त ४६ व्यकितओं के बारेमें कोई जानकारी नही दी गई।[१९] यहां उल्लेखनीय है कि १७ अधिकारी और २५० कोन्स्टेबल भील जाति के थे। इस तरह भीलों की संख्या सबसे ज्यादा थी। भील जाति को विशेष महत्व दिया गया था।

इस तरह ब्रिटिश शासन के लिए भील कोर्प्स का गठन एक सफलता थी। झालोद और दाहोद के क्षेत्रमें पहले इस तरह के गुन्हाओं होना सामान्य थे, वे अब लगभग खत्म हो चूके थे। १८६१ में जंगलमें यद्ध करनेमें एवं मुख्यमथक अलावा उपमथक के क्षेत्रोमें इस भील कोर्प्सने बहुत सस्ती और असरकारक सेवा बजाई थी। इस तरह १८६७ में जिले में सब ठीकठाक चलने पर दलों की संख्यामें कटौती करके ९३१ में से ४२९ की गई थी। इसके बावजूद पीछले सालोमें संख्यामें कि गई कटौती और नायक जाति के द्वारा खडी कि गई अराजकता को मिटाने के लिए उसमें फिरसे ५०० की बढोतरी कि गई।[२०]

५.निष्कर्ष

१९वीं सदीमें भारतमें ब्रिटिश सत्ता या सामंती सत्ता के खिलाफ आम जनताने अंदाजीत ७५ विद्रोह किये उसके तीसरे भागसे ही ज्यादा विद्रोह आदिवासीयों के द्वारा किये गये थे। आश्चर्यकी बात तो यह है कि आदिवासीयोंने अपने पास रहे मर्यादित हथियार होने पर भी उपकरणसे संप्पन ऐसी ब्रिटिश सत्ता के सामने बहुत लम्बे समय तक संधर्ष किया। आदिवासीयोंके विद्रोह के दमन के लिए ब्रिटिश सत्ताने अमानवीयताकी सभी सीमाए पार कर दी। यह मानना भूल होगी कि आदिवासीयोंके विद्रोह के दमन से उनके विद्रोह का कारण दूर नहीं हुआ था। देरी से भी ब्रिटिश सत्ता ने आदिवासीयोंके असंतोष और विद्रोहके कारणों को दूर करना पडा था। सुनिल सेन के कथन अनुसार आदिवासीयोंने भले ही हिंसात्मक संधर्ष किया, किन्तु बिनआदिवासी, भूस्वामी, शाहुकारों का दमन तो अविरत जारी था। इसके अलावा ईसाई मिशनरीयोंने भी बडी तादात्मे आदिवासी समुदायो को अपने अंकुश में रखनेकी सफलता प्राप्त की थी। और कई सालों तक मिशनरीओं उनके बीच टीके हुअे थे। इस तरह से स्पष्ट होता है कि जब आदिवासीयोंकी

जीवनशैली, उनके सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों पर हस्तक्षेप किये जाते है, तब वे उनका विद्रोह करते है । यह विद्रोह के कारणों और धटनाक्रम ऐवं इसमें आदिवासीयोंकी भागीदारी आदि का सारांश देखे तो यह वर्तमानमें भी प्रासंगिक है । १८५७ के बाद इतिहासबोधी ब्रिटिश सत्ताने इसमें से काफी बोधपाठ लिया । साम, दाम, भेद, और दंड से अंग्रेजोने आदिवासीयों को राजधर्मी बनाने का प्रयास शुरु किया । इसमें प्रथम सोपान के लिए लश्करी कार्यवाही के भाग स्वरुप सुअर और बाध के साथ भीलों को शिकार का माध्यम बनाया । उसके हिंसक विद्रोह की प्रतिक्रिया रुप सिर्फ ब्रिटिश शासन ही नहीं, प्रादेशिक रियासतेंने भी आदिवासीयों के साथ क्रूरतापूर्वक अमानवीय व्यवहारें किये थे । २०वीं सदी का प्रारंभ गुजरात के आदिवासीयों के लिए अनेक आशाओ लानेवाला था । सयाजीराव गायकवाड की आदिवासी प्रवृत्तियों का अभूतपूर्व विकास, ईसाई मिशनो और हिंदु सुधारको का आदिवासी क्षेत्रोमें व्यापक प्रवेश आदि के बावझूद भी आदिवासीयों के हिंसक विरोध की परंपरा नाबूद नहीं हूई थी । १८५७ में गुजरात के आदिवासीयों के योगदान विषय को लेकर उपरोक्त चर्चा परसे फलित होता है, कि भारत की अन्य प्रजाओं की तरह आदिवासीयोंने भी उसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया था । उनको अंग्रेजोंके विरोध करने के कारणों शहर के उच्चवर्गीय प्रजा से विशेष था । वे संगठित बने और साबरकांठा, पंचमहल, सागबारा और डांग प्रदेशोमें अंग्रेज सत्ताको हिलाकर रख दिया था । जिसके कारण अंग्रेजोने उसकी आदिवासीयों के प्रति द्रष्टिकोण बदलनेमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

संदर्भसूचि

१ वाघेला, अरुण (२०१२)श्नआजादीना जंगनो आदिवासी रंग,अहमदाबाद. पृश्न
२ बिपीनचंद्र, (१९९०)श्नभारतका स्वतंत्रता संघर्ष,पृ.११ ,
३ कोठारी,राजेश (२०१२)श्न१८५७ में गुजरात के योगदान, पीअेच.डी.,थिसीस,गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदावाद, गुजरात, पृ. २४०-५८
४ मिश्र, सुरेश (२००८)श्नउन्नीसवीं सदीमें भारतमें आदिवासी विद्रोहश्नपृ. १७
५ बीपीनचंद्र,भारतका स्वतंत्रता संघर्ष,१९९०,पृ.१७,और मिश्र, सुरेश (२००८)श्नन्नीसवीं सदीमें भारतमें आदिवासी विद्रोह,भोपाल . पृ .१४ - १५
६ सुरेश मिश्र, पृ . ७-८
७ एजन,पृ. ११ - १५
८ बीपीनचंद्र,पृ - १७
९ गुजरात- राजस्थान,पृ. १९९
१० अरुण वाधेला,पृ.२९
११ परमार, लाघाभाइ हरजी रेवाकांठा डीरेकटरी,वोल्युम-२, राजकोट,१९०३,पृ.३
१२ Gazetteer of the Bombay Fresidency,Bombay,1879, Vol-3,F.255
१३ एजन,पृ. २७३
१५ एजन,पृ. २७४
१६ महाराष्ट्र स्टेट आर्काइव्स, पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट वोल्युम - ५७,१८५८ पृ. ३१
१७ एजन,पृ. पृ. २३१-२४४
१८ Gazetteer of the Bombay Fresidency,Bombay,1879, Vol-3,F.273
१९ एजन,पृ. २१७-२१८
२० एजन,पृ. २७३